ओसियां की प्राचीनता

□ प्रो० देवेन्द्र हाण्डा

[प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़—१६००१४]

उत्तरी रेलवे के जोधपुर-जैसलमेर खण्ड पर जोधपुर से ६६ किलोमीटर उत्तर-उत्तर-पश्चिम में स्थित वर्तमान ओसियां नगर ओसवाल जाति के उद्गम स्थान के रूप में विख्यात है। एक स्थानीय परम्परा के अनुसार पहले ओसियां[1] का नाम मेलपुरपट्टन था। धुन्दलीमल्ल नामक एक साधु ग्राम से लगभग डेढ़ मील पूर्वोत्तर में एक पहाड़ी पर रहता था जहाँ एक टीले की चोटी पर उसके अवशेष दबे हैं तथा चरण-चिह्न उत्कीर्ण हैं।[2] अनुश्रुति के अनुसार एक दिन उसने अपने शिष्य को गाँव से भिक्षा लाने के लिए भेजा परन्तु किसी ने भी उसे खाने के लिए कुछ नहीं दिया, और वह खाली हाथ लौट आया। इस पर धुन्दलीमल्ल इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने गाँव को शाप दिया जिसके फलस्वरूप मेलपुरपट्टन उट्टण अर्थात् ध्वस्त हो गया। कालान्तर में यह स्थान उपलदेव[3] नामक परमार राजकुमार द्वारा शत्रुओं से पीड़ित हो मारवाड़ के तत्कालीन प्रतिहारवंशीय शासक की शरण लेने पर पुनः बसाया गया।[4] प्रतिहार राजा ने उपलदेव को मेलपुरपट्टन के ध्वंसावशेष देते हुए वहाँ शरण लेने के लिए कहा। उपलदेव ने निर्जन ग्राम को पुनः बसाया और इसका नाम नवनेरी नगरी रखा। क्योंकि उपलदेव ने यहाँ ओसला (शरण—आश्रय) लिया था इसलिए इस नगर का नाम ओसियां पड़ गया।[5] उपलदेव ने यहाँ सांखला परमारों की कुलदेवी सचिया

---

१. कहीं-कहीं यह नाम ओसिया, औसियां, ओशीया आदि लिखा भी मिलता है।

२. ओसियां के दक्षिण-पूर्व में लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ी है जिसे लूणाद्री (लवणाद्रि) कहा जाता है। इस पर दादी-बाड़ी स्थित है। इसमें प्राचीन चरण-चिह्न उत्कीर्ण हैं तथा एक अभिलेख है जिसका पाठ है—'सं० १२४६ माघ वदि १५ शनिवार दिने श्री मज्जिनभद्रोपाध्याय शिष्यः श्री कनकप्रभमिश्र कायोत्सर्गः कृतः' (P. C. Nahar : Jain Inscriptions, Part I, Calcutta, 1918, p. 199, No. 808)

प्राचीन चरण-चिह्नों पर संवत् २००१ में जीर्णोद्धार के समय एक अन्य मुण्डेर बनाकर संगमरमर के चरणचिह्न तथा एक अभिलेख स्थापित कर दिया गया था जिसमें चरण-पादुकाएँ श्री रत्नप्रभसूरि की बताई गई हैं।

३. कहीं-कहीं यह नाम उप्पल दे, उत्पल कुमार आदि भी मिलता है।

४. स्पष्टतः मूल ओसियां नगर उपलदेव से बहुत पहले का था।

५. D. R. Bhandarkar, The Temples of Osia, Annual Report, Archaeological Survey of India, 1908-09, p. 100.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता का एक मन्दिर भी बनवाया।[१]

विक्रम संवत् १३९३ में विरचित उपकेशगच्छ पट्टावलि में ओसियाँ के नाम तथा स्थापना के सम्बन्ध में एक अन्य परम्परा निबद्ध है।[२] इसके अनुसार श्रीमाल नगर में एक जैन राजा जयसेन शासन करता था।[३] उसकी दो रानियाँ थीं जिनसे क्रमशः भीमसेन तथा चन्द्रसेन नामक पुत्र हुए। शैव एवं जैन मतावलम्बी होने कारण दोनों की आपस में नहीं बनती थी। जयसेन अपने छोटे पुत्र को उत्तराधिकारी बनाना चाहता था परन्तु वह अपने जीवनकाल में औपचारिक रूप से ऐसा नहीं कर पाया। जयसेन की मृत्यु के पश्चात् दोनों भाइयों में उत्तराधिकार का झगड़ा इतना बढ़ गया कि शक्ति-प्रयोग द्वारा ही निर्णीत होने की नौबत आगई। तब चन्द्रसेन ने अपना दावा वापिस ले लिया। राज्यसिंहासन एवं शक्ति पाकर भीमसेन ने जैनों के साथ दुर्व्यवहार प्रारम्भ कर दिया जो अन्ततः चन्द्रसेन के नेतृत्व में नगर छोड़ कर चले गये। उन्होंने आबू पर्वत के निकट चन्द्रसेन के नाम चन्द्रावती की स्थापना की।[४]

भीमसेन ने अपने नगर में करोड़पतियों, लखपतियों तथा साधारण लोगों के लिए तीन परकोटे बनवाए जिसके कारण श्रीमाल नगर को भिन्नमाल (भीनमाल) कहा जाने लगा।[५] भीमसेन के राज्यकाल में भीनमाल शैवों तथा वाममार्गियों का केन्द्र बन गया।

भीमसेन के दो पुत्र थे—श्रीपुंज[६] तथा उपलदेव। दोनों भाइयों में मतभिन्नता के कारण कहा-सुनी हो गई और श्रीपुंज ने उपलदेव को ताना मारते हुए कहा कि इतनी ही ऐंठ है तो अपने भुजबल से अपना ही साम्राज्य क्यों नहीं स्थापित कर लेते।[७] इस पर उपलदेव ने अपना साम्राज्य स्थापित करने की शपथ ली और नगर छोड़ दिया। श्रीपुंज के चन्द्रवंशी महामात्य का पुत्र ऊहड़ जो अपने बड़े भाई सुवड़ से नाराज था,[८] उपलदेव

१. सचिया माता का यह मन्दिर वर्तमान नगर के पूर्व में एक पहाड़ी पर अब भी स्थित है। मूल मन्दिर के सम्भवतः नष्ट हो जाने पर बाद में उसी स्थान पर नवीन मन्दिर बनाया गया और इसमें संशोधन-परिवर्धन होते रहे।

ओसवाल जैन सचिया माता को अपनी कुलदेवी मानते हैं। मन्दिर की निजप्रतिमा महिषासुरमर्दिनी की है। विस्तार के लिए देखें—श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल, राजस्थान में जैन-देवी सच्चिवा पूजन, जैन सिद्धान्त-भास्कर, जून १९५४, पृ० १-५.

२. पट्टावली समुच्चय (सं० दर्शन विजय) वीरमगाम, १९३३.

३. भीनमाल के इतिहास के लिए देखें—K. C. Jain, Ancient Cities and Towns of Rajasthan, Delhi, Varanasi, Patana, 1972, pp. 155-65.

४. चन्द्रावती का इतिहास दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। विस्तार के लिए देखें—वही, पृ० ३४१-४७

५. सम्भवतः मूल नाम यहाँ बसने वाले भीलों के नाम पर भिल्लमाल था। एक अन्य परम्परा के अनुसार भिन्नमाल नाम यहाँ माल (माल, धन-दौलत, सम्पदा) के भीना (हृदम) होने के कारण पड़ा।—देखें वही, पृ० १५६।

६. पट्टावलि नं० १ में श्रीपुंज के राजकुमार सुरसुन्दर द्वारा गर्वपूर्वक श्रीमाल छोड़कर अठारह हजार बनियों, नौ हजार ब्राह्मणों और अनेक अन्य लोगों को लेकर नया नगर बसाने की बात कही गई है। पट्टावलि नं० ३ में उपलदेव को श्रीपुंज का पुत्र कहा गया है।

७. विस्तृत कथा के लिए देखें—मुनि ज्ञानसुन्दर जी, जैन जाति महोदय, प्रथम खण्ड, फलोधी, वि० सं० १९८६, प्रकरण ३, पृ० ४२-५०।

८. भीममाल में तीन अलग-अलग परकोटों में करोड़पति, लखपति तथा साधारण लोग रहते थे। सुवड़ करोड़पति होने के कारण पहले परकोटे में रहता था और ऊहड़ के पास निन्यानवे लाख होने के कारण उसे दूसरे परकोटे में रहना पड़ा। एक बार वह अस्वस्थ हो गया। उसके मन में आया कि अलग-अलग परकोटे में रहने के कारण दोनों भाई सुख-दुःख में एक-दूसरे का साथ सरलता से नहीं दे सकते। अतः वह पहले परकोटे में जाने की इच्छा से अपने भाई के पास गया और एक लाख रुपये माँगे। इस पर सुवड़ (अपर पट्टावलि के अनुसार उसकी पत्नी) ने उसे ताना दिया कि उसके बिना परकोटा सूना नहीं है। दोनों भाइयों में इस कारण नाराजगी उत्पन्न हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ हो लिया। चलते-चलते उनकी भेंट बैराट-नरेश संग्रामसिंह से हुई जिसने उपलदेव की वीरता एवं साहस से प्रभावित होकर अपनी पुत्री की सगाई उससे करदी। उपलदेव बैराट से ढेलीपुर (दिल्ली) पहुँचा। रास्ते में उसने घोड़े बेचने वाले व्यापारियों से इस शर्त पर कुछ घोड़े[१] खरीद लिये कि उनके मूल्य का भुगतान वह अपने सामाज्य की स्थापना कर लेने के उपरान्त करेगा। दिल्ली पर उस समय साधु नाम का राजा शासन करता था। वह छः मास तक अन्तःपुर में रंगरेलियाँ मनाया करता था और वर्ष के शेष छः मास प्रशासन पर ध्यान देता था। उपलदेव प्रतिदिन राजदरबार में जाता और एक घोड़ा उपहार देता। अन्ततः जब राजा को इस बात का पता चला तो उसने उपलदेव को बुलाया। उसके अपने राज्य की स्थापना के निश्चय की जानकारी प्राप्त कर उसने उपलदेव को एक घोड़ी दी और कहा कि जहाँ भी वह बंजर धरती देखे, अपने लिए नए नगर की नींव रख ले। एक शकुनी ने, जो उस समय पास ही बैठा था, उपलदेव को उस स्थान पर नगर की स्थापना करने की सलाह दी जहाँ घोड़ी पेशाब करे। ऊहड़ को साथ लेकर उपलदेव वहाँ से चल पड़ा और अगले दिन प्रातः जब घोड़ी ने मण्डोर से कुछ आगे पहुँचने पर बंजर जमीन पर पेशाब किया तो वह वहाँ रुक गया।[२] वहीं उसने अपने आप को नगर की नींव रखने के कार्य में लगा दिया। पृथ्वी के उसीली (गीली, ओसयुक्त) होने के कारण उसने नये नगर का नाम 'उएस पट्टन' रखा। कालान्तर में भीनमाल से बहुत से लोग वहाँ आकर बस गए कि नगर बारह योजन के क्षेत्रफल में फैल गया।[3]

उपरिवर्णित अनुश्रुतियों में कल्पना एवं अतिशयोक्ति का पुट होने पर भी एक बात समान है कि ओसियां नगर की स्थापना (या पुनःस्थापना) उपलदेव नामक राजकुमार ने की। यह स्थापना कब की गई इस सम्बन्ध में तीन मत विशेषतया प्रचलित हैं[४]—

१. जैन ग्रन्थों एवं जैन आचार्यों के मतानुसार वीर निर्वाण संवत् ७० में अर्थात् लगभग ४५७ ईसा पूर्व में भगवान् पार्श्वनाथ के सातवें पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वहाँ के राजा को प्रतिबोधित कर वीर मन्दिर की स्थापना की थी। स्पष्टतः ओसियां नगर उस समय राजधानी था और पर्याप्त समय पहले बसा होगा।

२. भाटों, भोजकों और सेवकों की वंशावलियों से पता चलता है कि विक्रम संवत् २२२ (बीये बाइसा) में राजा उपलदेव के समय में ओसियां में रत्नप्रभसूरि के उपदेश से ओसवाल जाति के मूल गोत्रों की स्थापना हुई।[५]

---

१. विभिन्न पट्टावलियों के अनुसार ५५ या १८० घोड़े।

२. दिल्ली और ओसियां की दूरी लगभग सवा छः सौ किलोमीटर है जिसे घोड़ी द्वारा एक रात में तय नहीं किया जा सकता।

३. कहा जाता है कि ओसियां नगर जब अपनी कीर्ति एवं समृद्धि के शिखर पर था तो मथानिया गांव—ओसियां के दक्षिण-दक्षिण-पूर्व में २५ किलोमीटर दूर—इसकी अनाज मण्डी था, २० किलोमीटर दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम में तिवरी गांव इसका तेलीवाड़ा था, १० किलोमीटर दूर खेतार गांव खत्रीपुरा था और लगभग चालीस किलोमीटर उत्तर में स्थित लोहावर इसकी लोहामण्डी था एवं दक्षिण-दक्षिण-पश्चिम में लगभग ४-५ किलोमीटर दूर घटियाला ग्राम इसका एक प्रमुख द्वार था। उपकेशगच्छ पट्टावलि नं० १ के अनुसार नगर की लम्बाई १२ योजन तथा चौड़ाई ९ योजन थी।

४. सुखसम्पतराय भण्डारी तथा अन्य, ओसवाल जाति का इतिहास, भानपुरा, १९३४, पृ० १-२०।

५. अठारह गोत्र ये हैं—परमार, सिसोदिया, राठौड़, सोलंकी, चौहान, सांखला, पड़िहार, बोड़ा, दहिया, भाटी मोयल, गोयल, मकवाणा, कछवाहा, गौड़, खरबड़, बेरड़ तथा सौखं। तुलना करें—सदाशिव रामरतन दरक माहेश्वरी, वैश्यकुलभूषण, मुंबई, सं० १९८०, पृ० १२३—प्रथम साख-पंवारसेस सीसोदसिंगाला ।। रणथम्भा राठौड़ वंश चंवाल बचाला ।। दया भाटी सौनगरा कछावा धन गौड़ कहीजे ।। जादम झाला जिंद लाज-मरजाद लहीजे ।। खरदरापाह औपेखरा लेणां पहाजलखरा। एक दिवस इता महाजनहुवा सूरबड़ाभिडसाखरा ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः ओसियां नगर विक्रम संवत् २२२ (१६५ ई०) में अस्तित्व में था और सम्भवतः पर्याप्त पहले बसा होगा।

३. तीसरा मत तथाकथित आधुनिक इतिहासकारों का है जो यह मानते हैं कि नवमी विक्रमी शताब्दी से पहले न तो ओसियां नगर का ही अस्तित्व था और न ओसवाल जाति का ही। इसके पश्चात् ही किसी समय भीनमाल के राजकुमार उपलदेव ने मण्डोर के प्रतिहार शासक का आश्रय ग्रहण कर ओसियां की स्थापना की होगी।

पहले मत के सम्बन्ध में जैन परम्परा साक्ष्य के अतिरिक्त अभी तक कोई ऐसा प्रमाण नहीं है जो इस बात की पुष्टि करता हो कि वीर निर्वाण संवत् ७० में ओसियां नगर विद्यमान था। विक्रम संवत् से चार सौ वर्ष पूर्व न तो भीनमाल नगर का ही अस्तित्व था और न जैन धर्म राजस्थान तक पहुँच पाया था। उस समय न तो उपकेश गच्छ अस्तित्व में था और न ही आचार्य रत्नप्रभसूरि की तत्कालीनता का कोई प्रमाण उपलब्ध है। स्पष्टतः यह मत प्राचीनता का बाना पहनाकर ओसवाल जाति को भारत की एक अत्यन्त प्राचीन जाति सिद्ध करने का प्रयास मात्र है, और कुछ नहीं। नाभिनन्दनजिनोद्धार प्रबन्ध में वीर निर्वाण संवत् के ७०वें वर्ष में रत्नप्रभसूरि द्वारा कोरटंकपुर[1] तथा उपकेश पट्टन के मन्दिरों में महावीर स्वामी की प्रतिमा की एक ही मुहूर्त में प्रतिष्ठा किये जाने का उल्लेख इस ग्रन्थ के बहुत बाद में लिखित होने के कारण केवल परम्परा को निबद्ध करने का प्रयास है न कि कोई ऐतिहासिक तथ्य क्योंकि पाँचवीं शताब्दी ईसा-पूर्व का कोई भी मन्दिर तथा मूर्ति ओसियाँ तथा कोरटंकपुर से तो क्या भारत के किसी भी स्थान से अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

द्वितीय मत के अनुसार ओसियां की स्थापना विक्रम संवत् २२२ अर्थात् १६५ ईस्वी से पूर्व हो चुकी थी और वहाँ उपलदेव के शासनकाल में रत्नप्रभसूरि द्वारा ओसवाल जाति के १८ मूल गोत्रों की स्थापना की गई। अभी तक कोई ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है जिसके आधार पर यह सिद्ध किया जा सके कि १६५ ईसवी में ओसियां में उपलदेव का शासन था, आचार्य रत्नप्रभसूरि उस समय विद्यमान थे, जैनधर्म राजस्थान में उस समय तक प्रविष्ट हो चुका था और जिन अठारह मूल गोत्रों का उल्लेख किया जाता है, वे उस समय विद्यमान थे।

अब रहा तृतीय मत—तथाकथित आधुनिक इतिहासकारों का मत—कि विक्रमी संवत् ९०० से पहले ओसवाल जाति और ओसियां नगर का अस्तित्व न था। ओसवाल जाति का इतिहास नामक ग्रन्थ में ही जहाँ इन उपरिलिखित तीनों मतों का विवरण उपलब्ध है,[2] हरिभद्रसूरि विरचित 'समराइच्च कहा' के श्लोकों का सन्दर्भ दिया गया है जिनमें उस नगर के लोगों का ब्राह्मणों के कर से मुक्त होना तथा ब्राह्मणों का उपकेश जाति के गुरु न होना उल्लिखित है।[3] हरिभद्र का समय संवत् ७५७ से ८५७ के बीच माना गया है जिससे स्पष्ट है कि संवत् ८५७ से पहले अर्थात् ८०० ईस्वी में उएस नगर एक समृद्ध एवं प्रसिद्ध नगर था।

ओसियां के महावीर जैन मन्दिर से प्राप्त संवत् १०१३ के प्रशस्तिलेख से पता चलता है कि इस मन्दिर की स्थापना प्रतिहार शासक वत्सराज के शासनकाल में की गई थी। वत्सराज प्रतिहार का उल्लेख जिनसेन विरचित 'जैन

---

१. कोरटंकपुर के इतिहास तथा पुरातनता के लिए देखें—Jain, op. cit., pp. 284-86.
२. भण्डारी, उपरोक्त, पृ० १-२०।
३. तस्मात् उकेशज्ञाति नाम गुरवो ब्राह्मणाः न हि।
उएस नगरं सर्वं कर - ऋण-समृद्धि - मत्॥
सर्वथा सर्व—निर्मुक्तमुएसा नगरं परम्।
तत्प्रभृतिः सजाताविति लोक—प्रवीणम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिवंशपुराण की पुष्पिका' में मिलता है—'पूर्वं श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सराजे….।' शक संवत् ७०० (७७८ ई०) की समाप्ति के एक दिन पहले जाबालिपुर (वर्तमान जालोर) में उद्योतन सूरि द्वारा रचित 'कुवलयमाला कथा' में भी वत्सराज का उल्लेख हुआ है।[१] धारावर्ष ध्रुवराज के शक संवत् ७०२ (७८० ई०) के भोर राज्य संग्रहालय के ताम्रपत्र अभिलेख[२], गोविन्द तृतीय के राधनपुर तथा वनी अभिलेखों,[३] कर्कराज के बड़ोदा ताम्रलेखों[४] तथा हरिवंश पुराण के उल्लेख के संयुक्त साक्ष्य से पता चलता है कि वत्सराज का वर्धमानपुर (वर्तमान वर्धवान) तथा जाबालिपुर (जालोर) से ७८० तथा ७८३ ईस्वी में किसी समय शासन समाप्त हुआ।[५] अतः स्पष्ट है कि ओसियां का महावीर मन्दिर भी ७८० ई० से पूर्व इस नरेश के शासनकाल में बन चुका था और उस समय ओसियां एक समृद्ध नगर रहा होगा। ओसियां के हरिहर मन्दिर तथा बावड़ी भी आठवीं शताब्दी में बने प्रतीत होते हैं[६] और उस समय नगर की समृद्धि के परिचायक हैं। कुछ समय पूर्व हरिहर-मन्दिर नं० २ के आंगन में सुरक्षित संवत् ८०३, ८१२ आदि के स्मारक लेख मिले हैं[७] जो ओसियां की प्राचीनता को आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ले जाते हैं। अतः तथाकथित इतिहासकारों का का मत कि विक्रमी संवत् ६०० से पूर्व ओसियां का अस्तित्व न था, भ्रान्त है। स्पष्ट है कि आठवीं शताब्दी के मध्य में ओसियां एक वैभवशाली नगर था।

ओसियां की स्थापना के सम्बन्ध में सभी पश्चकालीन परम्पराएँ एक स्वर से परमार राजकुमार उपलदेव को नगर की स्थापना का श्रेय देती हैं। इस परमार राजकुमार की पहिचान सन्दिग्ध है। उपलदेव ने मण्डोर के प्रतिहार शासक का आश्रय तथा साहाय्य प्राप्त किया था। यह प्रतिहार शासक कौन था, यह भी निश्चित नहीं। बाऊक के जोधपुर के विक्रम संवत् ८९४ (८३७ ई०) तथा कक्कुक के विक्रम संवत् ९१८ (८६१ ई०) के घटियाला अभिलेख से मण्डोर के प्रतिहारों की उत्पत्ति ब्राह्मण हरिश्चन्द्र की क्षत्रिया पत्नी भद्रा से वर्णित की गई है।[८] बाऊक तथा कक्कुक एवं प्रथम शासक हरिश्चन्द्र में ग्यारह पीढ़ियों का अन्तर था। अतः मण्डोर पर प्रतिहार शासन का प्रारम्भ सातवीं शताब्दी में किसी समय हुआ प्रतीत होता है। इस तरह इन परम्पराओं के आधार पर भी ओसियां की प्राचीनता सातवीं शताब्दी के कुछ समय पश्चात्—सम्भवतया आठवीं शताब्दी तक ही है। यदि परमार राजकुमार उपलदेव की पहिचान मालवा के वाक्पति मंजु (उत्पल) से की जाए तो ओसियां की स्थापना ९७४ से ९८६ ई० के बीच जा बैठती है जो कि इस शासक के राज्यकाल की ज्ञात तिथियाँ हैं।[९] इससे पहले उपलदेव नामक किसी परमार राजकुमार का पता नहीं।

---

१. परभडभिडडिभंगो पणैयन रोहिणीकला चन्दो।
   सिरि वच्छराय नामो नरहत्थी पत्थीवोजइया ॥
२. Indian Antiquary XIV, pp. 156 ff.
३. वही, VI, p. 248.
४. Indian Antiquary, XIV, pp. 156 ff.
५. Dr. Gulab Chandra Choudhary, Political History of Northern India from Jain Sources, Amritsar, 1963, p. 41.
६. Bhandarkar, op. cit., pp. 101 ff.
७. Noticed by Dr. K. V. Ramesh, Superintending Epigraphist, Archaeological Survey of India, Mysore vide a typed copy (received through the courtesy of Sh. R. C. Agrawal, Director, Archaeology & Museums Department, Rajasthan, Jaipur) of Inscriptions on Stone and other Materials, 1972-73, Nos. 214-15.
८. Dr. Dasharatha Sharma, Rajasthan Through the Ages, Vol. I, 1966, Bikaner, p. 541.
९. Ibid., p. 549.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस स्थिति में दसवीं शताब्दी में ओसियां की सम्भवतः पुनः स्थापना हुई होगी क्योंकि हम ऊपर देख चुके हैं कि आठवीं शताब्दी के मध्य में ओसियां एक समृद्ध एवं वैभवशाली नगर बन चुका था। कक्कुक के घटियाला लेखों में इस क्षेत्र में आभीरों की लूटमार तथा मण्डोर एवं रोहिन्सकूप (घटियाला) के आभीरों द्वारा नष्ट किये जाने का उल्लेख मिलता है।[१] सम्भवतः ओसियां भी उनकी लूटमार से न बचा हो और निर्जन हो गया हो।[२]

ओसियां के अध्ययन में प्रस्तुत लेखक को कुछ महत्त्वपूर्ण नवीन साक्ष्य मिले हैं जो ओसियाँ की प्राचीनता को और पीछे ले जाते हैं। यहाँ पहली बार उनका विवेचन किया जा रहा है।

ओसियां के महावीर जैन मन्दिर में किसी समय एक तोरण विद्यमान था जो बाद में खण्डित हो गया। इस तोरण के मुख्य स्तम्भ तथा अन्य भाग अब इसी मन्दिर में सुरक्षित हैं। १९०८-०९ में जब भाण्डारकर द्वारा ओसियां का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण किया गया था तो यह तोरण मन्दिर में खड़ा था।[3] इसके एक स्तम्भ पर अष्टकोण भाग की पट्टिका पर एक अभिलेख है जिसे भाण्डारकर ने देखा था तथा इसके 'सं०१०३५ आषाढ़ सुदि १० आदित्य वारे स्वाति नक्षत्रे श्री तोरणं प्रतिष्ठापितमिति' पाठ के आधार पर इसकी प्रतिष्ठापन तिथि दी थी।[४] बाद में श्री पूर्णचन्द नाहर ने भी इस तोरण के केवल उपरिलिखित अभिलेखांश को प्रकाशित किया था।[५] अन्य विद्वानों ने भाण्डारकर तथा नाहर का ही अनुसरण किया है। महावीर मन्दिर में सुरक्षित इन स्तम्भों का निरीक्षण करते हुए प्रस्तुत लेखक ने देखा कि स्तम्भ के अष्टकोणात्मक भाग की पूरी पट्टिका पर (आठों ओर) अभिलेख उत्कीर्ण हैं जिसके '····याते संवत्सराणां सुरमुनि सहित विक्रम····गुरौ शुक्लपक्षे पंचम्याम्····स कीर्ति कार····कषह देवयशः सद्य सोनशिखे[६] ···' आदि पाठ से यहाँ विक्रम संवत् ७३३ (सुर=३३, मुनि=७)[७] में ···मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी गुरुवार को मन्दिर (कीर्ति) बनवाने का पता चलता है। इसी तोरण की पट्टिका की अन्तिम तीन पंक्तियों में 'सं० १०३५ अषाढ़ सुदि १० आदित्यवारे स्वातिनक्षत्रे श्री तोरणं प्रतिष्ठापितमिति' पाठ से तोरण-प्रतिष्ठा का पता चलता है। स्पष्ट है कि यहाँ संवत् ७३३ अर्थात् ६७६ ई० में भी मन्दिर विद्यमान था। यह मूल मन्दिर सम्भवतया राजस्थान का प्राचीनतम जैन मन्दिर रहा होगा।

महावीर जैन मन्दिर की संवत् १०१३ की प्रशस्ति का सन्दर्भ ऊपर दिया जा चुका है। इसमें महावीर मन्दिर के ऊकेश नगर के मध्य में स्थित होने का उल्लेख है। इस नगर के अवशेषों की गवेषणा करते हुए मन्दिर के उत्तर-पश्चिम में एक निम्नस्थ थेह (पुराने टीले) का पता चलता है जिस पर अब श्री वर्धमान जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय का भवन तथा खेल के मैदान स्थित हैं। इस टीले की परिधि-रेखाओं पर पुराने ठीकरे चुने जा सकते हैं। पूछताछ से पता चला कि उक्त विद्यालय के वर्तमान भवन की नींव खोदते समय इस टीले से कुछ पुरानी वस्तुएँ मिली थीं जिनमें

१. Journal of the Royal Asiatic Society, p. 513.
२. Cf. Pupul Jayakar, "Osian" Marg, Vol. XII, No. 2, March 59, p. 69.
३. Bhandarkar, op. cit., Plate XLIII, a, Also see—A Ghosh (Ed.) Jaina Art and Architecture, New Delhi, 1975, Vol. II, Plate 144.
४. Bhandarkar, op. cit., p. 108.
५. Nahar, op. cit., p. 195, No. 789.
६. अभिलेख कुछ खण्डित एवं अस्पष्ट है। पूरा पाठ अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।
७. प्राचीनकाल में संख्या सूचक सांकेतिक शब्दों का प्रयोग संवत् देने के लिए प्रचलित था। विस्तार के लिए देखें—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, तृतीय संस्करण, दिल्ली १९५९, पृ० ११९-२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

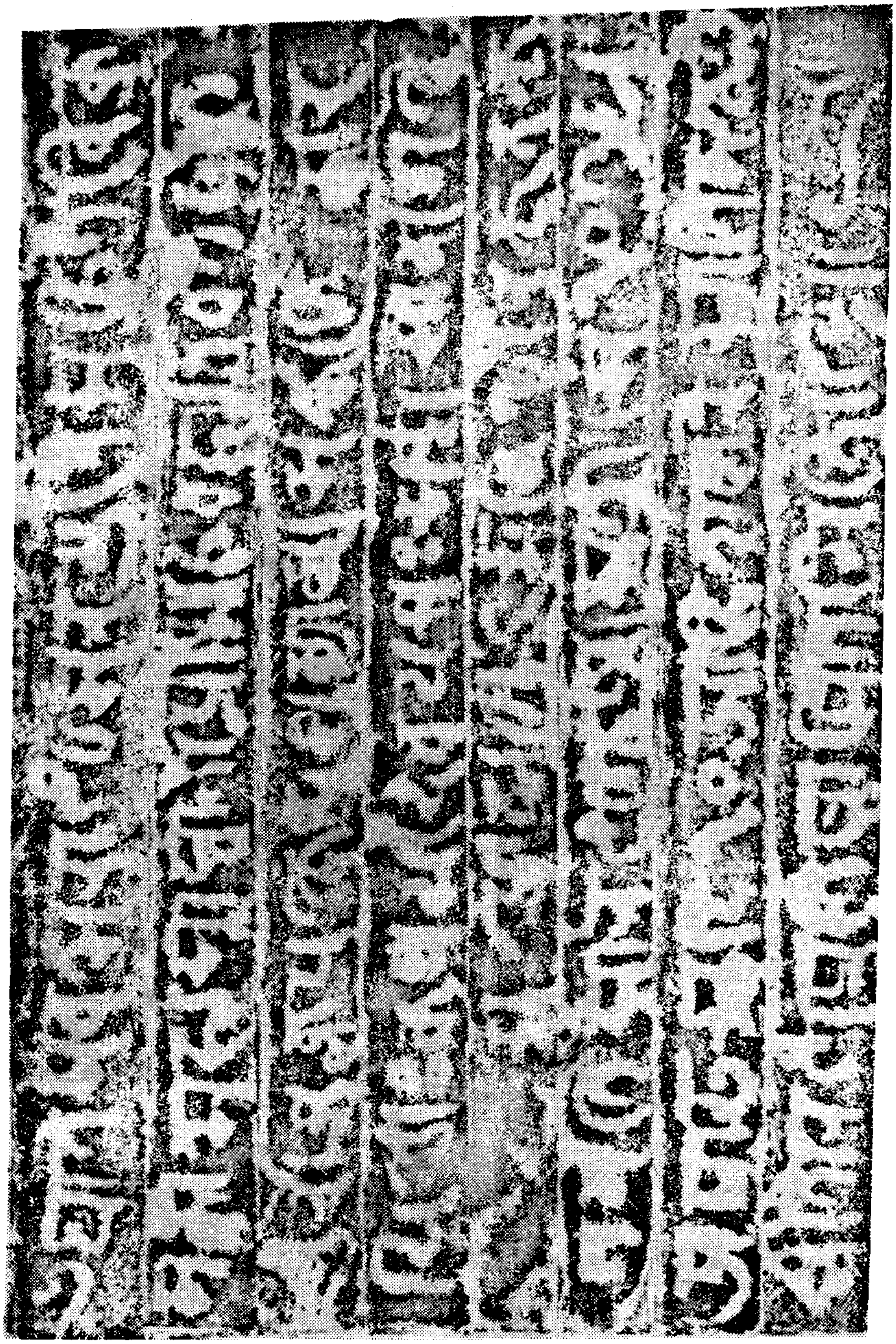

महावीर मन्दिर के तोरण-स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख

एक छोटा सा मिट्टी का कुल्हड़ भी था जिसमें चाँदी के बहुत छोटे-छोटे सिक्के भरे हुए थे। मिट्टी का वह कुल्हड़ तो तोड़ दिया गया था परन्तु सिक्कों में से ३७३ अब भी सेठ श्री मंगलसिंह रतनसिंह देव की पेढ़ी ट्रस्ट, ओसियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सुरक्षित हैं।[1] ये सभी सिक्के अरब गवर्नर अहमद के हैं और इनमें से अधिकतर टकसाली स्थिति में हैं। अरब

ओसियां से प्राप्त गवर्नर अहमद की रजत-मुद्राएँ

इतिहासकारों से पता चलता है कि आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अरबों के भारत आक्रमण को पूर्व में उज्जैन की एक नवीन शासकीय शक्ति द्वारा नियंत्रित किया गया।[2] विद्वानों का मत है कि इस नवीन शक्ति से अभिप्राय अवन्ति के प्रतिहार शासक से है। इससे संकेत मिलता है कि प्रतिहार मालवप्रदेश के अधिपति थे और आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उनका प्रभुत्व पश्चिम भारत में मारवाड़ तक था।[3] पुराने थेड़ से प्राप्त अहमद के चाँदी के सिक्कों का यह निचय इस बात का प्रमाण है कि आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ओसियां विद्यमान था और सम्भवतः एक महत्त्वपूर्ण व्यापार-केन्द्र था।

इन सिक्कों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं इसी थेड़ से उक्त विद्यालय के निर्माण के समय नींवों की खुदाई के समय मिले मिट्टी के चार बड़े-बड़े संचयन भाण्ड (Storage Jars) जो उपरिलिखित ट्रस्ट में ही सुरक्षित हैं।

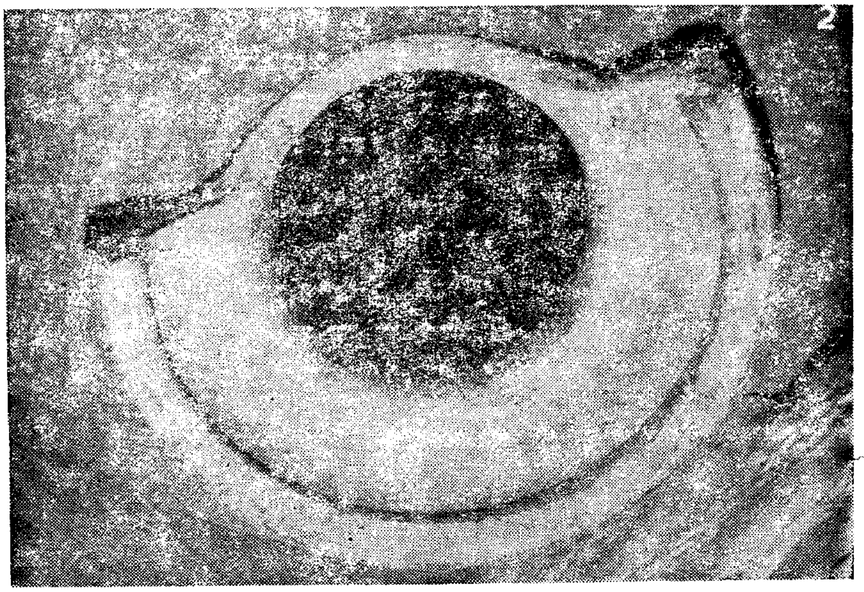

संचयन भाण्ड पर ब्राह्मी अभिलेख

इनमें से दो भाण्डों के उपान्तों पर छोटे-छोटे अभिलेख उत्कीर्ण हैं जो पुरालिपि शास्त्रीय आधार पर लगभग द्वितीय–

१. लेखक ओसियां के पुरावशेषों के अध्ययन हेतु श्री मक्खनलाल वार्ष्णेय (प्रधानाध्यापक, जैन विद्यालय तथा अवैतनिक प्रबन्धक, जैन ट्रस्ट) का अत्यन्त आभारी है। सचिया माता मन्दिर तथा महावीर जैन मन्दिर के पुजारी श्री जुगराज भोजक तथा उनके पूरे परिवार से प्राप्त स्नेह तथा सहायता के लिए भी लेखक उनका आभारी है।

२. Choudhary, op. cit.

३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय शताब्दी ईस्वी के हैं।[1] इस उपलब्धि से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ओसियां नगर ईसा की

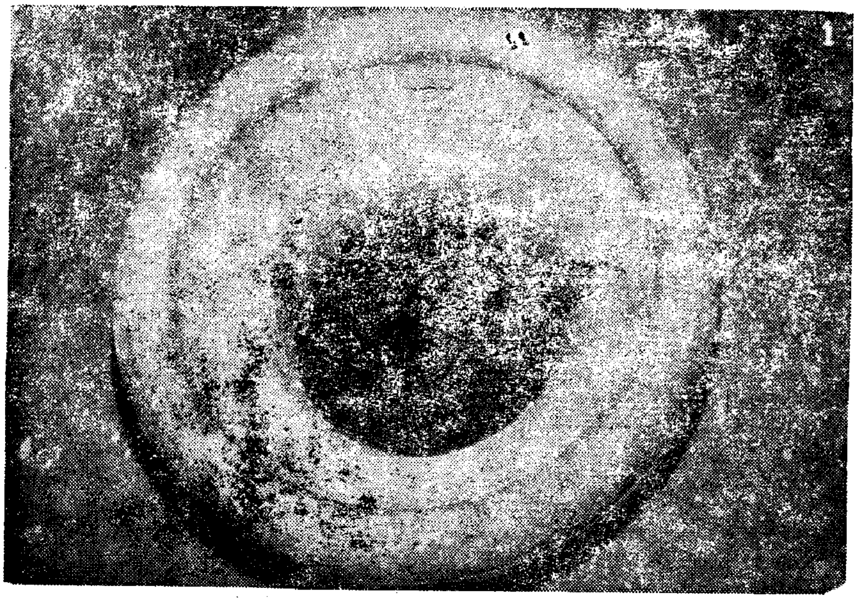

एक अन्य साभिलेख संचयन भांड

प्रारम्भिक शताब्दियों में अस्तित्व में था।[2] इस स्थान का वैज्ञानिक उत्खनन निश्चय ही ओसियां के इतिहास तथा जनजीवन पर नवीन प्रकाश डालेगा।[3]

□

१. इन अभिलेखों को अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

२. ओसियां की प्राचीनता ओसवाल जाति की प्राचीनता नहीं है।

३ लेखक अपने मित्र श्री कनकमल दूगड़ (अध्यक्ष, सचिया माता ट्रस्ट, ओसियां) का अत्यन्त आभारी है, जिन्होंने ओसियां के अध्ययन हेतु लेखक को न केवल प्रेरणा ही दी वरन् एतदर्थ सभी सुविधाएँ एवं साहाय्य प्रदान किये। शब्द हार्दिक आभार वहन के लिए सक्षम नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org